शिक्षक : पढ़ेगा नहीं, तो बढ़ेगा नहीं....

✍ शिवरतन थानवी

शिवरतन थानवी जी ने 'शिक्षक और स्वाध्याय' शीर्षक से एक बहुत ही सारगर्भित लेख 'खोजें और जानें' के लिए भेजा है। इस अंक में हम इस लेख का एक संपादित अंश दे रहे हैं। इसमें यह बात उभरती है कि अगर शिक्षक अपने क्षेत्र में हो रहे नए वैचारिक अनुसंधान और विमर्श से परिचित नहीं होगा, तो उसका क्या परिणाम होगा। अपरोक्ष रूप से यह बात स्कूल में बच्चों को दी जाने वाली सजा की अवधारणा से भी जुड़ी है।

शिक्षक और मां–बाप यदि अपने बालक–बालिकाओं तथा विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास में रुचि रखते हों तो उन्हें शिक्षा और शिक्षण पर लगातार कुछ न कुछ पढ़ते रहना है। भले जासूसी उपन्यास ही पढ़ें, घटिया घासलेटी साहित्य ही पढ़ें। जो घटिया पढ़ेगा उसमें तो बढ़िया की तरफ बढ़ने की संभावना हो सकती है किंतु जो धार्मिक ग्रंथों का पाठ तोते की तरह करता रहेगा उसमें शायद ही ऊंचा उठने की संभावना होगी। शिक्षक का धर्म शिक्षा है। धार्मिक पाठ नित्यकर्म की तरह भले हो, स्वाध्याय का अंग हो सकते हैं बशर्ते अपना दिल–दिमाग परिपक्व हो गया हो, अन्यान्य ग्रंथों का अनवरत अध्ययन करते रहना आपके स्वभाव में आ गया हो। धार्मिक ग्रंथों को साहित्य की तरह आप पढ़ते हैं और ज्ञान की दृष्टि से विवेचना करते हैं तो मूढ़मति नहीं बनेंगे। अंधविश्वासी कदापि न बनें। शिक्षक हैं तो आगे बढ़ें, आगे की दृष्टि से चिंतनशील पाठक बनें। प्रगतिशील शिक्षक बनें।

जो पढ़ेगा वही तो पढ़ाएगा। जो पढ़ेगा नहीं वह क्या पढ़ाएगा? यह मामूली–सी बात शिक्षक और मां–बाप याद रख लें तो उनका खुद का उद्धार हो जाएगा और खुद





शिक्षा व समाज का भी उद्धार हो जाएगा। खुद शिक्षा का उद्धार भला कैसे होगा, ऐसी शंका किसी की हो सकती है, किंतु इसकी भी इतनी अधिक कमी है कि शिक्षा की वर्तमान दशा पर विचार करने जो बैठेगा उसे तत्काल यह कमी ध्यान आ जाएगी। शिक्षा का ध्यान ही जो नहीं करेगा, जो यह जानने की तरफ कदम ही नहीं रखेगा कि शिक्षा आखिर होती क्या है, उसे तो कभी भी कुछ पता नहीं चलेगा, वह तो आंख मूंदे पुस्तकें रटाता रहेगा और परीक्षा–परिणाम और पैसा दोनों को प्राप्त करता जाएगा। पैसा और परीक्षा–परिणाम दोनों चाहिए, माना, लेकिन तब जब आप सही राह पर हों। इस सही राह को समझने के लिए दो घड़ी रुककर हम सोचें कि हमें क्या करना चाहिए था और हम क्या कर रहे हैं, चरित्र और व्यक्तित्व की ओर भी कोई ध्यान दिया या नहीं।

पढ़ना एक तरह का नहीं होता। भगवान का नाम हजार बार बोलने या लिखने से भगवान नहीं मिल जाते। कबीर–नानक से कुछ तो सीखें हम। गीता–रामायण या कुरान–पुरान तोते की तरह रटने से मनुष्य मनुष्य नहीं बन जाता। तोते की तरह रटकर परीक्षाएं पास करने वाले बी. एड./एम.एड. भी करने वाले, पीएच.डी./डी.लिट. या आलिम–फाजिम भी करने वाले शिक्षक कई होते हैं। सच्चा शिक्षक बनने की इच्छा यदि आप रखते हैं तो रटाई के बाद की पढ़ाई पर भी जरूर ध्यान देना होगा।

क्या आप जानते हैं कि आजकल हिंदी या अंग्रेजी में या किसी भी अन्य भारतीय भाषा में शिक्षा पर गंभीरता और गहराई से लिखा जा रहा है? क्या आपने कृष्ण कुमार, दयालचन्द्र सोनी, सुरेश पंडित, अनिल सद्गोपाल, अरविंद गुप्ता, डॉ. ललित किशोर, रामनरेश सोनी, रमेश थानवी या धर्मपाल को पढ़ा है? अंग्रेजी के जॉन डीवी, मारिया मॉण्टेसरी, गुजराती के गिजुभाई को मूल या अनुवाद में पढ़ा है? शिक्षा और सामान्य ज्ञान भी खूब पढ़ें किंतु अपने कक्षा–शिक्षण के विषय पर भी आधुनातन लेखन की खोज भी जारी रखें। पढ़ते रहें।

शिक्षक क्या पढ़ें, क्यों पढ़ें, यह एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय है। पढ़ने की आदत हो, तो कई प्रकार से लाभकारी है। पढ़ने की आदत ही नहीं हो तो शिक्षक क्या प्राप्त करेगा और क्या देगा? देने की जरूरत शिक्षक को जब–जब भी होती है वह टुकुर–टुकुर देखता रहता है। वर्तनी नहीं जानता। शब्द भंडार नहीं। अपने विषय का पूरा ज्ञान नहीं। दुनिया का हाल उसने जाना नहीं। सामान्य ज्ञान की फिक्र उसने की नहीं। समाज के बनते–बिगड़ते स्वरूप पर नजर उसने रखी नहीं। देश के आर्थिक–सामाजिक विकास का ताना–बाना उसने समझा नहीं। पिछला इतिहास कैसे बना है और आगे इतिहास बनाने को हमें क्या करना है इस पर क्षण भर भी सोचा नहीं। तो ऐसी स्थिति में शिक्षक की किसी भी विषय में कोई राय नहीं हो सकती। किसी भी चर्चा में वह सम्मिलित नहीं हो सकता।

शिक्षक की जिम्मेवारी बड़ी है। समाज सुधार भी उसका धर्म है और व्यक्ति का चरित्र व व्यक्तित्व भी उसका धर्म है। वह सोचे कि उसकी जिम्मेवारी क्या है, कितनी बड़ी है, कितनी विस्तृत है। वह सोचे। सोचेगा तो ही जानेगा। कब सोचेगा? कैसे सोचेगा? सोचने का उत्प्रेरक कौन होगा और सोचने का आधार क्या होगा? धर्म कहो, उत्तरदायित्व कहो, चाहे जिम्मेवारी कहो। कुछ ऐसा हो जो हमें आगे बढ़ाता है और सही दिशा दिखाता है।

माखनराम

एक प्रधानाचार्य थे। ईमानदार थे, निष्ठावान थे। लेकिन विद्यालय में जो विचित्र बातें वे कभी–कभी कर दिया करते थे उन्हें आप देखते तो जरूर तय करते कि आप वैसा नहीं करेंगे। उनका ही क्या, कई अन्य संस्था प्रधानों को भी अपनी स्कूलें फौजी मानदंडों से चलाना आदर्श लगता है। उन्हें भी लगता था। वे ऐसे ही पढ़े थे। कहते थे, 'लाइन में चलो।' एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाना हो, पुस्तकालय पीरियड में पुस्तकालय जाना हो, या व्यायाम के पीरियड में व्यायाम में जाना हो, हर कक्षा में विद्यार्थी को लाइन में जाना अनिवार्य था। किस्सा यह प्रसिद्ध हुआ कि जो लाइन में नहीं होता उसे वे डंडा मार दिया करते थे। एक छोटा–सा डंडा हरदम उनके हाथ में रहा करता था। मान लो उनका नाम था माखनराम। एक दिन एक विद्यार्थी मिला अकेला। उसको भी जड़ दिया, और कहा, 'लाइन में चलो।' लड़का बोला, 'सर, अकेला हूं, कैसे लाइन में चलूं?' माखनराम तो माखनराम। अब कह दिया तो कह दिया, डंडा जड़ दिया। तत्काल बोले, 'अकेला है तो क्या हुआ, माखनराम की स्कूल में पढ़ना है तो लाइन में चलना पड़ेगा।'



अनुशासन का नशा चढ़ जाता है तो कभी–कभी ये सीमाएं भी तोड़ डालता है। उनका एक किस्सा इससे भी दो कदम आगे का है। उन्हीं के स्कूल का एक अध्यापक एक दिन स्कूल में बरामदे में अपनी क्लास लेने जा रहा था। कक्षा में पढ़ाने की कोई बात दिमाग में होगी, सिर नीचे था, माखनराम जी के दिमाग में अनुशासन ही अनुशासन घूम रहा होगा। उन्होंने यह भी न देखा कि शिक्षक है कि शिक्षार्थी। डंडा जड़ दिया। दोनों ने नजरें उठाई, परस्पर देखा और हंस पड़े।

माखनराम जी ने समय की पाबंदी का अनुशासन भी पूरी कठोरता से लागू करने की ठानी। प्रार्थना से पहले स्कूल का फाटक बंद करवा देते। प्रार्थना के बाद फाटक खुलवाते और फाटक पर स्वयं डंडा मारते जाते। यह उनका रोज का क्रम था। यूनीफार्म भी देखते। जो यूनीफॉर्म में न होता उसे एक डंडा अतिरिक्त प्राप्त होता। कुछ विद्यार्थियों को उन्होंने विलंब से व बिना यूनीफॉर्म कई बार देख लिया। एक–दो बार धमकाया कि अब ऐसा किया तो तुम्हारी हजामत कर दूंगा। और एक दिन तो सचमुच ही यह कर दिखाया। बड़ी कैंची मंगवाई और विलंब या बिना यूनीफॉर्म जो लंबे समय से आ रहे थे उनके सिर के बाल ऐसे टेढ़े–मेढ़े काट दिए कि मारे शर्म के वे कई दिन या कई महीने घरों में दुबके पड़े रहे।

यह परिणाम था प्रधानाचार्य के अधूरे व कच्चे शिक्षा–दर्शन का। प्रशिक्षण के बाद तो उन्होंने कोई किताब छुई ही नहीं होगी।

✍ **शिवरतन थानवी**

उत्प्रेरणा मिलती है सत्साहित्य के स्वाध्याय से। कोई वक्त था जब वेद–शास्त्र, कुरान–पुराण पढ़ने से स्वाध्याय हो जाता था। संध्या वंदन करने से या पांच बार नमाज पढ़ने से या पंडित–पादरी–मौलवी का प्रवचन सुनने से सही दिशा और स्वधर्म का ज्ञान मिल जाता था। अब वह समय नहीं रहा। समय हमें बदलता है, हम समय को बदलते हैं। वक्त था जब पंडित सिखाते थे विदेश जाना अधर्म है, आज पंडितों में होड़ मची है विदेशों में अपने–अपने आश्रम खोलने की और वहां शिष्यों की अधिक से अधिक संख्या प्राप्त करने की।

स्पष्ट है कि मात्र धार्मिक शिक्षकों पर निर्भर रहे तो आप घाटे में रहेंगे। आपको अपने अध्ययन का दायरा धर्म–निरपेक्ष (या कहें पंथ–निरपेक्ष अर्थात् सैकुलर) तक भी जरूर बढ़ाना है। ज्ञान की सीमाएं संकुचित रखनी ही नहीं हैं। नितांत उन्मुक्त रहना है। रुचियां भी बढ़ानी हैं और पढ़ने



की आदत भी बढ़ानी है। आदत हमें कितनी है हम यह देखें, क्या–क्या पढ़ना हमें पसंद है हम यह भी देखें। पढ़ना हमें अच्छा लगता है भी कि नहीं, इस पर सबसे पहले ध्यान दें। शिक्षक हैं तो इतना तो करना ही पड़ेगा।

गन्ने का रस बेचने वाला क्या तैयारी करता है इसकी कल्पना करें। पान बेचने वाला कितनी बातों का ध्यान रखता है इसकी कल्पना करें। कोई भी काम–धंधे वाला क्यों न हो, अपनी दुकान, अपनी मशीन, खोलने से पहले हर उस बात पर ध्यान देता है जो उस दुकान, उस मशीन के सुचारू संचालन में आवश्यक है। हमारे शिक्षक को अपने काम–धंधे का सुचारू संचालन करना हो तो उसे किन–किन बातों पर अग्रिम ध्यान देना चाहिए यह सोचा जाए तो क्या कोई बुराई है? क्या ऐसा करना हमारा धर्म नहीं है?

धार्मिक होना इस अर्थ में बुरा नहीं है। शिक्षक होने के लिए स्वाध्याय की पहली तैयारी यही है कि हम धर्म और अध्यात्म के परंपरागत–रूढ़िवादी रूप से आगे चलें। शिक्षक आगे चलता है। शिक्षक सदैव प्रगतिशील होता है, तरक्की पसंद होता है। वादों से बचता है किंतु वादे–वादे जायते तत्वबोध का सूत्र हरदम साथ रखता है। किसी वाद से डरना नहीं है। किंतु जो वाद रसातल को ले जाता है उसकी पहचान जरूर कर लेनी है। स्वाध्याय का सर्वोपरि लक्ष्य यही होना चाहिए।

स्वाध्याय का मतलब केवल किताबों को पढ़ना या पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ना ही नहीं होता है। स्वाध्याय का मतलब खुद के स्वभाव पर भी ध्यान देना होता है। स्वाध्याय का मतलब परिवेश को देखना–समझना भी होता है। खुद को देखिए और पूरे पर्यावरण तथा दुनिया को देखिए और सोचिए कि श्रेय (अच्छा) क्या है? उन्नति इसमें है कि उसमें है? अध्यात्म का नाम तो लोग बहुत लेते हैं और धर्म का नाम भी लोग बहुत लेते हैं किंतु किस आत्मा में झांकना है इसका कोई पता नहीं होता और कौन–सा धर्म उनका धर्म है, स्वधर्म है, यह वे कभी समझने का यत्न करते ही नहीं।

पहले श्रेय का प्रश्न लें। हमारे कुछ शिक्षक मित्र हैं, हम उन्हें दूर गांव–शहर के स्कूलों में लाए थे। उनकी अंग्रेजी–हिंदी बहुत अच्छी है। वे शिक्षा में ऊंची उपाधियां धारण किए हुए हैं। हमने उन्हें एक ऐसे पद के योग्य माना

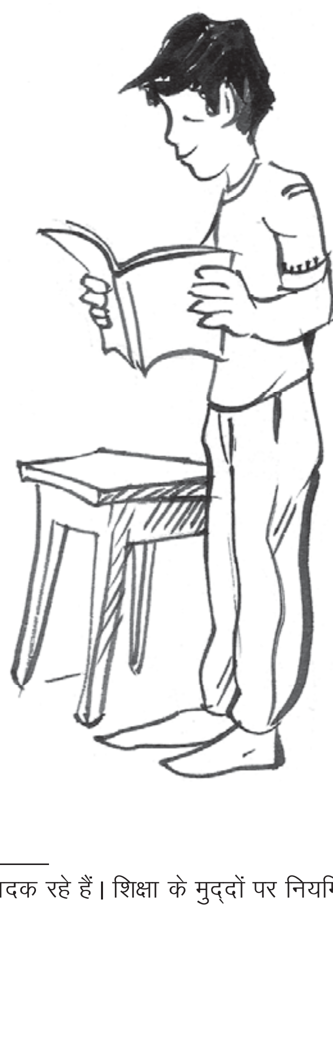
जहां स्वाध्याय का खूब मौका था, पत्र–पत्रिकाओं के अंबार थे, जो चाहो वह पुस्तक प्राप्त करने की छूट थी किंतु किसी ने कहीं जाना, लाभप्रद माना और किसी ने कहीं। पढ़ने की पूर्णकालिक प्रचुर स्वतंत्रता–सुविधा वाली उस जगह रहना पसंद नहीं किया। दूसरे शिक्षक हिंदी साहित्य, समाज, राजनीति, सभी के अच्छे ज्ञाता, कवि और विद्वान हैं, हमने उन्हें भी योग्य माना, पर वे बोले, 'मेरा घर विद्यार्थियों से भरा रहता है, महीने का पंद्रह–बीस हजार कमाता हूं, क्या करूंगा यहां आकर!' वे भी लाभ देखते थे, हम भी लाभ देखते थे। वे पास का लाभ देख रहे थे, हम दूर का लाभ देख रहे थे। उनकी नजरों में एक अकेले वे स्वयं थे, हमारी नजरों में हजारों हजार लोग थे। लेकिन अभिवृत्ति पास देखने की है तो दूर कैसे नजर आएगा?

ऐसे ऐसे अनुभव हों तो सोचिए कि शिक्षकों का श्रेय क्या है, प्रेय क्या है, उनका जीवन मूल्य क्या है? वे उदाहरण देखकर सीखने को कुछ मिलता है तो हम सीखें।

मेरे एक पड़ोसी हैं। बनियान नहीं पहनते, घिस जाएगी। बाहर निकलते हैं तो पहन लेते हैं, मैली न हो जाए और साबुन व्यय न हो जाए इस भाव से। इस भाव से लाखों जमा कर लिए हैं। आप गहने आदि गिरवी रख ब्याज पर ले जाएं तो लाख–दो लाख ही नहीं पांच लाख भी दे देंगे किंतु उनके जिस पुत्र–पुत्री ने उनकी गंभीर बीमारी में तनतोड़ कर सेवा की थी उन्हें काम पड़ने पर सौ–पांच सौ रुपए भी बिना गिरवी उधार नहीं देंगे, ब्याज पर भी नहीं।

आप देखिए, ऐसे जितने उदाहरण मिलें ध्यान से देखिए। आपको सीखने–समझने को बहुत मिलेगा। आप खुद को देखना और समझना, सम्हालना और जानना सीख जाएंगे। आपने कई शिक्षक देखे होंगे जो न हिंदी जानते हैं न अंग्रेजी, न देश जानते हैं न दुनिया, पर काम चलाते हैं। तनख्वाह पाते हैं और रिटायर होकर पेंशन के हकदार हो जाते हैं। जितना जाना, जितना पढ़ाया, वही अच्छा। अधिक की आशा उनसे करो भी तो क्या फायदा? आशा उनसे की जाती है जो बदल सकते हैं, जो सोच सकते हैं, और सोचकर जो अपने जीवन में बदलाव भी ला सकते हैं। आप उनमें हैं तो अवश्य पढ़िए, पढ़ने की आदत डालिए।

हमारा स्वाध्याय बदलाव के लिए ही होता है। दूसरों को देखते हैं तो बदलते हैं, खुद को देखते हैं। पुस्तकों के माध्यम से अपने भीतर झांकना भी सीखते हैं। अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं। पुस्तकों के माध्यम से अतीत में झांकते हैं, दूर–दूर तक देखते हैं, तो बदलते हैं। देखते हैं तो बदलते जरूर हैं। परंतु देखें तभी न! खुद को और दुनिया को देखने की फुरसत निकालें तब न! क्या पढ़ा, कैसा पढ़ा और क्या निचोड़ निकाला यह आप जानें। जैसा निचोड़ निकालेंगे वैसा ही आपका जीवन–दर्शन, वैसा ही आपका शिक्षा–दर्शन बनेगा।



शिवरतन थानवी : राजस्थान शिक्षा विभाग की पत्रिका 'शिविरा' के कई वर्षों तक संपादक रहे हैं। शिक्षा के मुद्दों पर नियमित रूप से लिखते रहे हैं। मोची स्ट्रीट, फलोदी, जोधपुर में निवास।